कबीर पर दावेदारी

डॉ. संतोष कुमार
शहीद भगतसिंह कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
santosh106@gmail.com

शोध सार :
कबीर का नित नया बनता-बदलता पाठ हिंदी आलोचना का एक रोचक अध्याय है. आलोचकों ने कबीर का नया पाठ निर्मित करने के साथ-साथ कबीर पर अपना-अपना दावा भी पेश किया है. सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के सन्दर्भ में कबीर की कविता को पढने के कारण हिंदी आलोचना ऐसे निष्कर्ष निकालती रही है. कबीर की कविता को पढ़ते हुए उसमें निहित सामाजिक-सांस्कृतिक छवियों का उद्घाटन करने से कबीर का एक अलग ही पाठ संभव होता है. इस पद्धति से पढ़ने पर कबीर किसी समुदाय विशेष तक सीमित नजर नहीं आते हैं. उनकी भक्ति का मार्ग सबके लिए खुला है बस शर्त यही है कि भक्त का मन निर्मल हो. निर्मल मन वाले लोग ईश्वर के करीब होते हैं, किसी तरह की सामुदायिक संकीर्णता में विश्वास नहीं करते हैं और मानव मात्र की सेवा में यकीन करते हैं.

बीज शब्द :
संवेदना, आलोचना, धर्म, कर्मकांड, शास्त्र, अध्यात्म, भागीदारी, लोकतंत्र

कबीर हिंदी के सबसे विवादस्पद कवियों में एक हैं। कबीर के पाठ को लेकर हिंदी आलोचना में खासी उत्तेजना रही है। इतनी दीर्घावधि तक चलने वाला वाद-विवाद और आरोप-प्रत्यारोप किसी दूसरे कवि के नसीब में नहीं रहा। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' से लेकरआचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ धर्मवीर और पुरुषोत्तम अग्रवाल से लेकर कमलेश वर्मा तक कबीर के दावेदारों और व्याख्याकारों की फेहरिस्त बहुत लंबी है। लेकिन ये दोनों भी अंतिम नहीं हैं। कबीर के नए दावेदार फिर मैदान में हैं। कबीर इस अर्थ में बेहद खुशनसीब हैं। ऐसा अमरत्व किसी दूसरे कवि के नसीब में कहाँ ? 'हम न मरिहै, मरिहै संसारा' वाली कबीर-उक्ति सचमुच कबीर पर चरितार्थ हो रही है। धर्म और अध्यात्म के पवित्र इलाके में जनतंत्र की मांग करने वाला आज भी हिंदी आलोचना को जनतांत्रिक होने का अवसर प्रदान कर रहा है। यह कबीर की सर्वकालिक महानता का प्रमाण है। सबके अपने अपने कबीर हैं, सबका अपना-अपना कबीर-पाठ है। इतनी दीर्घावधि तक प्रासंगिक रहने वाला, अनेक बहुरंगी पाठो की सम्भावना वाला विरला कवि-व्यक्तित्व हिंदी में तो क्या दूसरी भारतीय भाषाओं में भी न होगा।
लेकिन यही कबीर की बदनसीबी भी है. कबीर के दावेदारों ने कबीर की कविता के विविध रंगों को खोजने के बजाए उन पर अपना रंग चढ़ाना शुरू कर दिया. एक कवि की इससे बड़ी बदनसीबी और क्या होगी कि उसे कवि के अतिरिक्त कुछ और माना जाये ? उसकी कविता को पढ़ने की बजाए अन्यान्य उपकरणों और साक्ष्यों के माध्यम से उस पर अपना हक जताया जाये. कवि को पढना और उसकी कविता को पढ़ना एक ही बात नहीं होती. कबीर के आलोचक कबीर को अधिक पढ़ते हैं और उनकी कविता को कम. इसलिए कबीर हिंदी आलोचना का स्थाई आखाड़ा बने हुए हैं. इस आखाड़े में उतरने वाला हर पहलवान दूसरे को पछाड़ना चाहता है. इस उखाड़-पछाड़ की मनःस्थिति के कारण इन पहलवानों के तर्कों में पैनापन और तीखापन तो आ जाता है लेकिन कबीर- काव्य को पढने के लिए आवश्यक संवेदनशीलता स्पर्धा की आंच में सूख जाती है. कबीर के आलोचकों ने अपने मन चीता तथ्यों व तर्कों के धार पर निष्कर्ष निकाला है और उन निष्कर्षों की पुष्टि के लिए कबीर की कविता को उधृत भर किया है. कबीर के दावेदारों ने कबीर का क्या हाल बनाया है इसकी एक झलक प्रस्तुत करना आवश्यक है।

कबीर के पाठक को शुरू में ही बता दिया जाता है कि एक किंवदंती के अनुसार ,कबीर एक विधवा ब्राह्मणी की औलाद थे. कबीर पर लिखी गयी कोई भी महत्वपूर्ण किताब इस सूचना से रहित नहीं है. आधुनिकता की पैदाइश माने जाने वाले और वैज्ञानिक दृष्टि का अग्रदूत समझे जाने वाले आलोचकों ने आखिर इस अप्रमाणिक सूचना को बार-बार क्यों दुहराया ? क्या इस दुहराव से कबीर की कविता की कोई समझ बढ़ जाती है ? यदि नहीं तो यह स्पष्ट है कि यह कबीर पर दावेदारी जताने का एक चतुर प्रयास है. कबीर के मरणोपरांत हिंदुओं और मुसलमानों के कथित झगड़े के मूल में भी दावेदारी ही है. रामानंद और कबीर के आपस में गुरु-शिष्य होने अथवा न होने का असमाप्य विवाद भी दरअसल कबीर पर ब्राह्मणवादी और दलित दावेदारी का ही परिणाम है. लेकिन इस प्रसंग के आने से पहले मार्क्सवादी आलोचकों और इतिहासकारों ने भी अपनी दावेदारी पेश की और स्थापित किया कि कबीर सामंतवाद के खिलाफ उभरते पूंजीवाद की एक सांस्कृतिक आवाज हैं। उनका तर्क है कि मुगलकाल में व्यापार में उन्नति की वजह से दस्तकारों और व्यापारियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई और वे स्वाभाविक रूप से अपने सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन और निम्न स्थितियों के खिलाफ आवाज उठाने लगे। कबीर इसी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की पैदाइश थे। लेकिन क्या सचमुच कबीर सिर्फ दस्तकारों और व्यापारियों की ही आवाज थे ? कबीर से पहले ऐसा ही निर्गुण भक्ति आन्दोलन दक्कन में भी हो चुका था. वहां के निर्गुण भक्ति आन्दोलन में भी दस्तकार, व्यापारी और दलित संत कवियों की भरमार है. वहां तो मुग़ल शासन कभी पहुंचा ही नहीं. फिर वे कैसे पैदा हुए? दक्कन के निर्गुण आन्दोलन और उत्तर भारत के निर्गुण आन्दोलन में भी बहुत समानता पाई जाती है. इस दृष्टि से देखने पर मार्क्सवादी स्थापना समस्याग्रस्त हो जाती है. बहरहाल ! बाद में दलित आलोचना ने भी अपना दावा पेश किया. उसने कबीर को 'ब्राह्मणवादी' खेमे से निकालकर दलित खेमे में प्रतिष्ठित करना चाहा. दलित आलोचक डॉ धर्मवीर ने दावा किया कि कबीर दलित जाति के महापुरुष थे और दलितों के आजीवक धर्म के ध्वजवाहक थे। इसके प्रत्युत्तर में आलोचना की मुख्यधारा की ओर से डॉ पुरुषोत्तम अग्रवाल की आवाज आई कि कबीर किसी भी सांस्थानिक धर्म के विरोधी थे और उनकी कविता मानवमात्र की पक्षधर है। कबीर को दलित खेमे से छिनने की दूसरी कोशिश नयी-नयी शुरू हो रही ओबीसी आलोचना ने भी की और स्थापित करने का प्रयत्न किया कि कबीर ओबीसी कवि हैं।

आधुनिकता की पैदाइश माने जाने वाले और वैज्ञानिक दृष्टि का अग्रदूत समझे जाने वाले आलोचकों ने आखिर इस अप्रमाणिक सूचना को बार-बार क्यों दुहराया ? क्या इस दुहराव से कबीर की कविता की कोई समझ बढ़ जाती है ? यदि नहीं तो यह स्पष्ट है कि यह कबीर पर दावेदारी जताने का एक चतुर प्रयास है.

कबीर के इन दावेदारों ने कबीर पर अपना हक़ जताने के लिए खूब मगजमारी की है। तरह-तरह के स्रोतों को खोजा गया, तर्क और तथ्यों के अम्बार खड़े किये गए, आरोप -प्रत्यारोप की झड़ी लगाई गयी और बाल की खाल निकालने के नए कीर्तिमान बनाए गए. यह सब करते हुए कबीर के इन आलोचकों ने कबीर की यह सीख भूला दी कि वेद-कतेब पर भरोसा करने की अपेक्षा 'अनभैसाँचा' और 'सहजप्रेम' अधिक वरेण्य है। खैर, यह तो आलोचना-प्रविधि की ही सीमा है लेकिन यदि आलोचक कबीर की तरह ही सहज रहते तो इस अखाड़ेबाजी से बचा जा सकता था. बहरहाल ! यह यक्ष प्रश्न तो अपनी जगह मौजूद ही है कि कबीर किसकी आवाज हैं ? क्या कबीर की कविता इस प्रश्न का जवाब दे सकती है ? कबीर की संवेदना का परिवेश कैसा है ? वह किन उपकरणों से अपनी संवेदना का प्रकटीकरण करती है ? उन काव्योपकरणों के स्रोत क्या हैं ? अर्थात कविता के बिम्बों, प्रतीकों, रूपको और उपमाओं में छुपे हुए सामाजिक चित्रों और जीवन के चिन्हों की परख व पड़ताल की जाये तो हम इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि कबीर किसकी आवाज हैं ? तो आइए पहचान करते हैं उन चित्रों व विवरणों की जो कविता की गोद में छुपकर बैठे हैं.

कबीर के बारे में सामान्य धारणा यह है कि वे नगर के कवि हैं. लेकिन उनकी कविता इस धारणा को ध्वस्त करती है. कबीर की कविता में खेती- किसानी और पशुपालन के विवरण इतने अधिक हैं कि उनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे गांव से न सिर्फ परिचित थे बल्कि उसमें रचे बसे भी थे. कुछ उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया जा सकता है: सूप ज्यूँ त्यागे फट की असार, चौड़े मड़या खेत, तउन छाड़े खेत, पाँहड़ उपरि मेह, गंगतीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहाना, जतन बिन मृगनिखेत उजारे, कबीर खेती किसानका, खेत बिचारा क्या करे, खेत बिराना खाई आदि वे विवरण हैं जो कबीर की संवेदना की अभिव्यक्ति के साधन

बनते हैं. इसी तरह उनकी कविता में पशुपालन के भी अनेक विवरण छुपे हैं. उदाहरण के लिए : कबीर यह जग अंधला जैसी अंधी गाई, बछड़ा था सो मर गया उमी चाम चटाई, पञ्चबरन दस दुहिए गाई, एक दूध देखो पति आइ , एक दहिड़िया दही जमायो , बैल बियाई गायी भई बाँझ, बछड़ा दुहेती नो साँझ, मूड मुड़ाई जो सिद्धि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुंची कोई , जो ब्यावे तो दूध न देई आदि विवरण पशुपालन से कबीर के घनिष्ट परिचय और प्रेम की ओर संकेत करते हैं. खेती और पशुपालन अलग-अलग नहीं किये जा सकते। दोनों कृषि-अर्थव्यवस्था और कृषि-संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। कृषि की आर्थिकी में खेती और पशुपालन एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बगैर दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। अब मशीनीकरण के कारण स्थिति भले ही बदल गयी है। कबीर की कविता में इस कृषि संस्कृति से आने वाले दर्जनों विवरण यह स्पष्ट करते हैं कि उन्हें सिर्फ नगर का कवि अथवा सिर्फ व्यापारियों व दस्तकारों की आवाज कहकर सीमित नहीं किया जा सकता। बनारस में पैदा होने मात्र से कोई नगर का प्रतिनिधि नहीं हो जाता। कृषि सभ्यता से चुने गए काव्योपकरण कबीर के गांव से रिश्ते की गहराई को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हैं।

कबीर का ऐसा ही गहरा रिश्ता दस्तकारी और व्यापार से भी है. दस्तकारी और व्यापारी जीवन से जुड़े विवरणों, बिम्बों और रूपकों से कबीर की कविता भरी पड़ी है. इन कविताओं में एक दूसरे ही कबीर सामने आते हैं. इन कविताओं में कबीर का दस्तकारी से गहरा लगाव सामने आता है. ये कविताएं प्रेम, लगाव और मार्मिकता से भरी पड़ी हैं. पाका कलश कुम्हार का, नौ मन सूत उलिझिया, तम्बोली के पान ज्यों, खेवटिया के नाव ज्यों, मालन आवत देख करि कलियाँ करे पुकार, मति बसि पड़ो लुहार के, कुम्भरा एक कमाई माटी, सांई मेरा बणिया, सहज करे व्योपार, बिन दांडी बिन पालड़ो तोले सब संसार, कबीर पूंजी साह की, तू जिनि खोवे ख्वार आदि कुछ उदहारण हैं जो दस्तकारी और व्यापारी जीवन से कबीर के प्रगाढ़ सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं।

कृषि, पशुपालन और दस्तकारी से अपनी अभिव्यक्ति के साधन चुनने वाली कविताएं कबीर की दूसरी कविताओं से बिल्कुल अलग हैं. इन कविताओं का मिजाज प्रश्नवाचक नहीं है. नही इनमें कहीं चुनौती देने की मुद्रा है. ये कवितायेँ बेहद आत्मीयता और सहजता से लिखी गयी हैं। इन कविताओं में कबीर बहुत भाव प्रवणता और प्रगल्भता से हरि और भक्त के सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। वे बार-बार अपने आध्यात्मिक मन्तब्य को इन कृषि सभ्यता से जुड़े भौतिक उपकरणों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इन कविताओं में प्रेम और आत्मीयता के छलकते भाव एक दूसरे ही कबीर को हमारे सामने लाते हैं। वे बहुत विह्वलता से अपने और हरि के सम्बन्ध को बताते हैं। इस प्रेम में सहजता और स्वाभाविकता को महसूस किया जा सकता है। इस प्रेम की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें दासत्व की भावना नहीं है। यह बराबरी वाला प्रेम है। यदि कबीर एक ओर यह कहते हैं कि :

कबीर कुत्ता राम का , मुतिया मेरा नाउँ
गलेराम की जेवड़ी, जितखीं चेतित जाऊं

तो दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि :

कबीर मन निर्मल भया,जैसे गंगा नीर
पाछे लागे हरि फिरै,कहत कबीर कबीर

हरि और कबीर दोनों एक दूसरे के पीछे हैं क्योंकि आग दोनों तरफ बराबर लगी है। बस शर्त यही है कि वह सच्चा और सहज हो। वह सच्चा और सहज तभी होगा जब मन निर्मल होगा. निर्मल मन ही ईश्वर का गेह है. ऐसा प्रेम मालिक व दास के बीच नहीं होता। राजा और प्रजा के बीच नहीं होता। यह तो बराबरी वाला प्रेम है जो प्रेमी और प्रेमिका के बीच होता है। अकारण नहीं है कि कबीर अपनी ईश्वर भक्ति को बार-बार पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के रूपक और उपमा के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

वही कबीर के दुश्मन हैं जो इस प्रेम के बीच में आना चाहते हैं. चाहे वे पण्डे और मौलवी हों, वेद और कितेब हों, मंदिर और मस्जिद हों अथवा इन सबसे अस्तित्व पाने वाला तथा इन सबका पोषण करने वाला धर्मशास्त्र और कर्मकांड हो. कबीर हरि और हरिजन के बीच दलाली और मध्यस्थता की पूरी संरचना के खिलाफ हैं. वह संरचना जो धार्मिक और सामाजिक जीवन में मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद करती है. कुछ मनुष्यों में श्रेष्ठता और कुछ में हीनता का भाव भरती है. कबीर ऐसी व्यवस्था और इस व्यवस्था के पोषको को चुन-चुनकर सुनाते हैं. यहाँ कबीर बेहद आक्रामक और तेजस्वी रूप में सामने आते हैं. वे इस मध्यस्थता की संरचना के पोषकों के सामने तन कर खड़े होते हैं और अपने प्रश्नों के माध्यम से चुनौती पेश करते हैं. ये कविताएं स्पष्ट रूप से बतलाती हैं कि कबीर में किसी तरह की चतुराई अथवा छिपाव नहीं है. वे सीधे अपने दुश्मन को संबोधित करते है:

पाड़े वाद वदन्ते झूठा, पोथी पढ़ी-पढ़ीजगमुआ,
कबीर पढ़ि बा दूरकरि, पुस्तक देइ बहाई,
मुंड मुडावत दिन गए, अजहुँन मिलियाराम

आदि उदाहरणों को इस प्रसंग में देखा जा सकता है. इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए की हरि और हरिजन के बीच मध्यस्थता करने वाली इस पूरी संरचना से पीड़ित कौन था ? क्या ये वही लोग नहीं थे जिनके जीवन और पेशे के विवरणो के माध्यम से कबीर अपनी कविता को रूपायित करते हैं. किसान, पशुपालक, दस्तकार और व्यापारी ही वे लोग हैं जिन्हें मध्यस्थता की इस शोषक संरचना ने धार्मिक और सामाजिक रूप से निकृष्ट और अपवित्र घोषित कर रखा था. यही वे लोग थे जो खान-पान और रहन-सहन की दृष्टि से भेदभाव के शिकार थे. कबीर जब इस भेदभाव और श्रेष्ठता-

निकृष्टता को पोषित करने वाली सामाजिक संरचना के खिलाफ तनकर खड़े होते हैं, उसे चुनौती पेश करते हैं और अपने तर्कों से पाड़े व मौलवी की ज्ञानसत्ता को ध्वस्त करते हैं तो दरअसल वे धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में इन किसानों, पशुपालकों, दस्तकारो आदि की आवाज बुलंद कर रहे होते है. वे धर्म और अध्यात्म के 'पवित्र' इलाके में इन 'अपवित्रो' की भागीदारी सुनिश्चत कर रहे होते हैं. इस अर्थ में कबीर की भक्ति दरअसल भागीदारी का घोषणापत्र है. यहाँ यह भी ध्यान देना होगा की कबीर ऐसे लोगो में नहीं थे जो सिर्फ प्रतिक्रिया करते रहते हो अथवा आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहते हों। कबीर एजेंडा-सेटर थे। वे सिर्फ वेद-कितेब, पांडे-मौलवी, मंदिर-मस्जिद और कर्म कांड को ख़ारिज ही नहीं करते है बल्कि इनका विकल्प भी सुझाते है। वे बहुत स्पष्ट रूप से कहते है की हरि से सहज प्रेम ही भक्ति की एकमात्र शर्त है। इसके लिए और किसी दूसरी योग्यता अथवा अर्हता की जरुरत नहीं है- न जन्म की, न शास्त्र-ज्ञान की और नहीं कर्मकांड की। सिर्फ और सिर्फ राम से प्रेम करने की एकमात्र अर्हता ने भक्ति और आध्यात्म के क्षेत्र में वंचितो के प्रवेश का मार्ग खोल दिया। संत परंपरा में वंचित समूहों के संतो की इतनी अधिक संख्या इसका प्रणाम है। बदले में इन वंचित तथा निकृष्ट समझे जाने वाले समुदायों ने भी कबीर की वाणी को अपना कंठाहार बनाया। किसान और दस्तकार जैसे वंचित समुदायों के बीच कबीर की लोकप्रियता इस दोतरफ़ा प्रेम का अकाट्य प्रमाण है। इन समुदायों के जीवन से चुने गए काव्योपकरण, इनसे सम्बंधित कविताओ में व्यक़्त आत्मीयता, इन कविताओं का प्रेम-रस-सिक्तमन-मिजाज और इनमें निहित वंचितो की भागीदारी की न्यापूर्ण लड़ाई यह साबित करते है की कबीर की कविता कृषि, पशुपालन और दस्तकारी करने वाले वंचित समुदायों की आवाज है। लेकिन कबीर वंचना का उत्तर प्रति वंचना से नहीं देते हैं. उनके भक्ति मार्ग में किसी भी व्यक्ति के प्रवेश का निषेध नहीं है. उनकी भक्ति सिर्फ वंचित समुदाय तक ही सीमित नहीं है. उनके बताए भक्ति मार्ग पर निर्मल मन वाले हर भक्त का स्वागत है।

सन्दर्भ :

1. डॉ.धर्मवीर (2000). *कबीर और रामानंद : किवदंतियां*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

2. अग्रवाल, डॉ पुरुषोत्तम.(2016). *अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय*. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली.

3. डॉ.धर्मवीर. (2013). *कबीर : खसम ख़ुशी क्यों होय ?*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

4. डॉ.धर्मवीर. (1997). *कबीर के आलोचक*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. नयी दिल्ली.

5. वर्मा, कमलेश(2017). *जाति के प्रश्न पर कबीर*. द मार्जिनलाइज्ड प्रकाशन. इग्नू रोड दिल्ली.

6. दास, श्यामसुंदर (2012). *कबीर ग्रंथावली*. (सं.). नयी दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. नयी दिल्ली.

राष्ट्रभाषा

प्रचलित मान्यता के विरुद्ध, हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, यद्यपि राष्ट्रभाषा के विषय में भारतीय संविधान में कुछ भी नहीं कहा गया है, ना ही संविधान में इसका कोई प्रावधान मिलता है। अपितु, स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्रता के पश्चात, हिंदी भाषा की बड़ी जनसँख्या को देखते हुए, तथा प्रशासनिक सरलता हेतु हिंदी को भारत की "राष्ट्रभाषा" के रूप में मान्यता प्रदान करने का विचार भी किया गया, एवं इसकी मांग भी उठी। परंतु भारत की भाषाई विविधता में केवल एक भाषा की बड़ी जनसंख्या के आधार पर ऊँचा स्थान देने को असंवैधानिक और अनुचित माना गया एवं इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया। वर्तमान में हिंदी भाषा संविधान की ८ वीं अनुसूची में अंकित २२ मान्य भाषाओं में से एक है।

हिंदी को राष्ट्रभाषा कहने के एक हिमायती महात्मा गांधी भी थे, जिन्होंने २९ मार्च १९१८ को इंदौर में आठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। उस समय उन्होंने अपने सार्वजनिक उद्बोधन में पहली बार आह्वान किया था कि हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिये। उन्होने यह भी कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। [28] उन्होने तो यहाँ तक कहा था कि हिन्दी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। आजाद हिन्द फौज का राष्ट्रगान 'शुभ सुख चैन' भी "हिंदुस्तानी" में था। उनका अभियान गीत 'कदम कदम बढ़ाए जा' भी इसी भाषा में था, परंतु सुभाष चंद्र बोस हिंदुस्तानी भाषा के संस्कृतकरण के पक्षधर नहीं थे, अतः शुभ सुख चैन को जनगणमन के ही धुन पर, बिना कठिन संस्कृत शब्दावली के बनाया गया था।